॥ श्रीहरिः ॥
1176▲
शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR
स्वामी रामसुखदास

1176
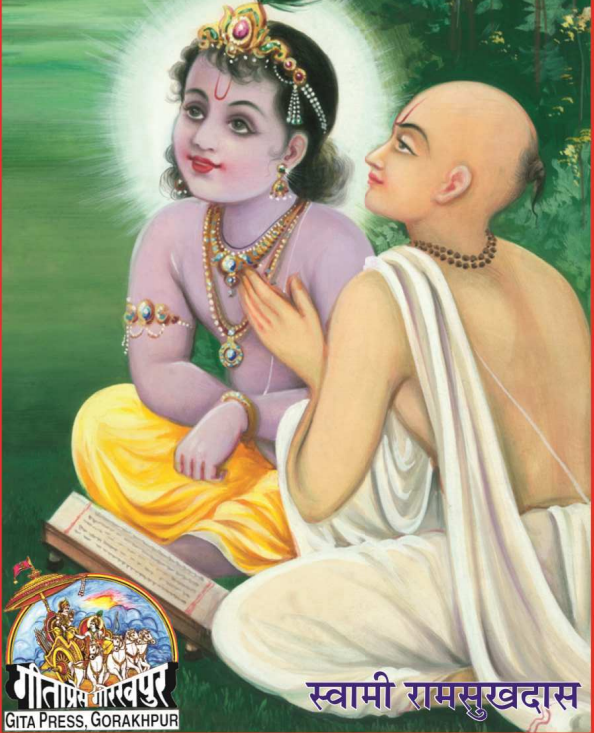
॥ श्रीहरिः ॥

हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये—

शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता

और

हम कहाँ जा रहे हैं ? विचार करें!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

विषय-सूची

शिखा रखनेके लाभ

'अखिल भारतीय पण्डित महापरिषद्' (वाराणसी)-

ने शिखा रखनेके निम्न लाभ बताये हैं—

१. शिखा रखने तथा उसके नियमोंका यथावत् पालन करनेसे मनुष्यको सद्बुद्धि, सद्विचार आदिकी प्राप्ति होती है।

२. शिखा रखनेसे आत्मशक्ति प्रबल बनी रहती है।

३. शिखा रखनेसे मनुष्य धार्मिक, सात्त्विक और संयमी बनता है।

४. शिखा रखनेसे मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक समस्त कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है।

५. शिखा रखनेसे मनुष्य प्राणायाम, अष्टांगयोग आदि यौगिक क्रियाओंको ठीक-ठीक कर सकता है।

६. शिखा रखनेसे सभी देवता मनुष्यकी रक्षा करते हैं।

७. शिखा रखनेसे मनुष्यकी नेत्रज्योति सुरक्षित रहती है।

८. शिखा रखनेसे मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घायु होता है।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता

हिन्दू-संस्कृति बहुत विलक्षण है। इसमें छोटी-से-छोटी अथवा बड़ी-से-बड़ी प्रत्येक बातका धर्मके साथ सम्बन्ध है और धर्मका सम्बन्ध कल्याणके साथ है। हिन्दूधर्ममें जो-जो नियम बताये गये हैं, वे सब-के-सब नियम मनुष्यके कल्याणके साथ सम्बन्ध रखते हैं। कोई परम्परासे सम्बन्ध रखते हैं, कोई साक्षात् सम्बन्ध रखते हैं। हिन्दूधर्ममें विद्याध्ययनका भी सम्बन्ध कल्याणके साथ है। संस्कृतव्याकरण भी एक दर्शनशास्त्र है, जिससे परिणाममें परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है! इसलिये हिन्दूधर्मके किसी नियमका त्याग करना वास्तवमें अपने कल्याणका त्याग करना है!

जैसे, घड़ीमें छोटे-बड़े अनेक पुर्जे होते हैं।

उसमें बड़े पुर्जेका जो महत्त्व है, वही महत्त्व छोटे पुर्जेका भी है। बड़ा पुर्जा अपनी जगह पूरा है और छोटा पुर्जा अपनी जगह पूरा है। छोटे-से-छोटा पुर्जा भी यदि निकाल दिया जाय तो घड़ी बन्द हो जायगी। इसी तरह हिन्दूधर्मकी छोटी-से-छोटी बात भी अपनी जगह पूरी है और कल्याण करनेमें सहायक है। छोटी-सी शिखा अर्थात् चोटी भी अपनी जगह पूरी है और मनुष्यके कल्याणमें सहायक है। शिखाका त्याग करना मानो अपने कल्याणका त्याग करना है!

जैसे घड़ीके छोटे पुर्जेकी जगह बड़ा पुर्जा काम नहीं कर सकता, ऐसे ही हम कोई भी काम करें, उसमें अगर थोड़ी-सी भी कमी रह जायगी तो उसकी पूर्ति नहीं होगी। महाराज नलके चरित्रमें आता है कि कलियुग कई दिनोंतक उनके शरीरमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करता रहा, पर प्रवेश कर नहीं सका। एक दिन महाराज नलने लघुशंका करके हाथ तो धो लिये, पर पैर नहीं धोये तो उसी दिन

कलियुग उनके भीतर प्रवेश कर गया। फलस्वरूप महाराज नल और उनकी पत्नी दमयन्ती—दोनोंको बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। अतः शिखा नहीं रखना बड़ी भारी कमी है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती।

शिखा अर्थात् चोटी हिन्दुओंका प्रधान चिह्न है। हिन्दुओंमें चोटी रखनेकी परम्परा प्राचीनकालसे चली आ रही है। परन्तु अब आपने इसका त्याग कर दिया है—यह बड़े भारी नुकसानकी बात है। विचार करें, चोटी न रखनेके लिये अथवा चोटी काटनेके लिये किसीने प्रचार भी नहीं किया, किसीने आपसे कहा भी नहीं, आपको आज्ञा भी नहीं दी, फिर भी आपने चोटी काट ली तो आप मानो कलियुगके अनुयायी बन गये! यह कलियुगका प्रभाव है; क्योंकि उसे सबको नरकोंमें ले जाना है। चोटी कट जानेसे नरकोंमें जाना सुगम हो जायगा। इसलिये आपसे प्रार्थना है कि चोटीको साधारण समझकर इसकी उपेक्षा न करें। चोटी रखना मामूली दीखता है, पर यह मामूली काम नहीं है।

अग्निका एक नाम 'शिखी' है। शिखी उसको कहा जाता है, जिसकी शिखा हो—**'शिखा यस्यास्तीति स शिखी'।** वह धूमशिखावाला अग्नि हमारा इष्टदेव है—**'अग्निर्देवो द्विजातीनाम्'।** अतः शिखा हमारे इष्टदेव (अग्नि)-का प्रतीक है।

हरिवंशपुराणमें एक कथा आती है। हैहय और तालजंघ वंशके राजाओंने शक, यवन, काम्बोज, पारद आदि राजाओंको साथ लेकर राजा बाहुका राज्य छीन लिया। राजा बाहु अपनी पत्नीके साथ वनमें चला गया। वहाँ राजा बाहुकी मृत्यु हो गयी। तब महर्षि और्वने उसकी गर्भवती स्त्रीकी रक्षा की और उसको अपने आश्रममें ले आये। वहाँ उसने एक पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर राजा सगरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। राजा सगरने महर्षि और्वसे शस्त्र और शास्त्रकी विद्या सीखी। समय पाकर राजा सगरने हैहयोंको मार डाला और फिर शक, यवन, काम्बोज, पारद आदि राजाओंको भी मारनेका निश्चय किया। वे शक, यवन आदि राजालोग महर्षि वसिष्ठकी

शरणमें चले गये। वसिष्ठजीने कुछ शर्तोंपर उनको अभयदान दे दिया और राजा सगरको आज्ञा दी कि वे उनको न मारें। राजा सगर अपनी प्रतिज्ञा भी नहीं छोड़ सकते थे और वसिष्ठजीकी आज्ञा भी नहीं टाल सकते थे। अतः उन्होंने उन राजाओंका सिर शिखासहित मुँड़वाकर उनको छोड़ दिया। वे राजालोग क्षत्रिय थे, पर शिखा कटनेके कारण वे सब धर्मभ्रष्ट हो गये—

शकाः यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशाम्पते।
कोलिसर्पाः समहिषा दार्द्याश्चोलाः सकेरलाः॥
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
वसिष्ठवचनाद् राजन् सगरेण महात्मना॥

(हरिवंशपुराण १४।१८-१९)

‘शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोलिसर्प, महिष, दर्द, चोल और केरल—ये सब क्षत्रिय ही थे। वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा सगरने इनके धर्मको ही नष्ट कर दिया।’

इस कथासे यह सिद्ध होता है कि शिखा काटनेसे

मनुष्य मरे हुएके समान हो जाता है और अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। प्राचीनकालमें किसीकी शिखा काट देना मृत्युदण्डके समान माना जाता था। धर्मके साथ शिखाका अटूट सम्बन्ध है। इसलिये शिखा काटनेपर मनुष्य धर्मच्युत हो जाता है। बड़े दुःखकी बात है कि आज हिन्दूलोग मुसलमानों–ईसाईयोंके प्रभावमें आकर अपने हाथों अपनी शिखा काट रहे हैं! खुद अपने धर्मका नाश कर रहे हैं! यह हमारी गुलामीकी पहचान है।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६। २३–२४)

'जो मनुष्य शास्त्रविधिको छोड़कर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरणकी शुद्धि)-को, न सुख (शान्ति)-को और न परमगतिको ही प्राप्त होता है।'

'अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है—ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य-कर्म करनेयोग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधिके अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।'

चोटी रखना शास्त्रका विधान है। चाहे सुख मिले या दुःख मिले, हमें तो शास्त्रके विधानके अनुसार चलना है। भगवान् जो कहते हैं, सन्त-महापुरुष जो कहते हैं, शास्त्र जो कहते हैं, उसके अनुसार चलनेमें ही हमारा वास्तविक हित है। भगवान् और उनके भक्त—ये दोनों ही निःस्वार्थभावसे सबका हित करनेवाले हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(मानस, उत्तर० ४७। ३)

इसलिये इनकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाला लोक और परलोक दोनोंमें सुख पाता है।

एक कहानी है। एक बनजारा था। वह बैलोंपर

मेट (मुल्तानी मिट्टी) लादकर दिल्लीकी तरफ आ रहा था। रास्तेमें कई गाँवोंसे गुजरते समय उसकी बहुत-सी मेट बिक गयी। बैलोंकी पीठपर लदे बोरे आधे तो खाली हो गये और आधे भरे रह गये। अब वे बैलोंकी पीठपर टिकें कैसे? क्योंकि भार एक तरफ हो गया। नौकरोंने पूछा कि क्या करें? बनजारा बोला—'अरे! सोचते क्या हो, बोरोंके एक तरफ रेत (बालू) भर लो। यह राजस्थानकी जमीन है, यहाँ रेत बहुत है।' नौकरोंने वैसा ही किया। बैलोंकी पीठपर एक तरफ आधे बोरेमें मेट हो गयी और दूसरी तरफ आधे बोरेमें रेत हो गयी।

दिल्लीसे एक सज्जन उधर आ रहे थे। उन्होंने बैलोंपर लदे बोरोंमेंसे एक तरफ रेत झरते हुए देखी तो वे बोले कि बोरोंमें एक तरफ रेत क्यों भरी है? नौकरोंने कहा—सन्तुलन करनेके लिये। वे सज्जन बोले—'अरे! यह तुम क्या मूर्खता करते हो? तुम्हारा मालिक और तुम एक-से ही हो। बैलोंपर मुफ्तमें ही भार ढोकर उनको मार रहे हो! मेटके

आधे-आधे दो बोरोंको एक ही जगह बाँध दो तो कम-से-कम आधे बैल तो बिना भारके खुले चलेंगे।' नौकरोंने कहा कि आपकी बात तो ठीक जँचती है, पर हम वही करेंगे, जो हमारा मालिक कहेगा। तुम जाकर हमारे मालिकसे यह बात कहो और उनसे हमें हुक्म दिलवाओ। वह मालिक (बनजारे)-से मिला और उससे बात कही। बनजारेने पूछा कि आप कहाँके हैं? कहाँ जा रहे हैं? उसने कहा कि मैं भिवानीका रहनेवाला हूँ। रुपये कमानेके लिये दिल्ली गया था। कुछ दिन वहाँ रहा, फिर बीमार हो गया। जो थोड़े रुपये कमाये थे, वे खर्च हो गये। व्यापारमें घाटा लग गया। पासमें कुछ रहा नहीं तो विचार किया कि घर चलना चाहिये। उसकी बात सुनकर बनजारा नौकरोंसे बोला कि इनकी सम्मति मत लो। अपने जैसे चलते हैं, वैसे ही चलो। इनकी बुद्धि तो अच्छी दीखती है, पर उसका नतीजा ठीक नहीं निकलता। अगर ठीक निकलता तो ये धनवान् हो जाते। हमारी बुद्धि भले

ही ठीक न दीखे, पर उसका नतीजा ठीक होता है। मैंने कभी अपने काममें घाटा नहीं खाया।

बनजारा अपने बैलोंको लेकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ उसने जमीन खरीदकर मेट और रेत दोनोंका अलग-अलग ढेर लगा दिया और नौकरोंसे कहा कि बैलोंको जंगलमें ले जाओ और जहाँ चारा-पानी हो, वहाँ उनको रखो। यहाँ उनको चारा खिलायेंगे तो नफा कैसे कमायेंगे? मेट बिकनी शुरू हो गयी। उधर दिल्लीका बादशाह बीमार हो गया। वैद्यने सलाह दी कि अगर बादशाह राजस्थानके धोरे (रेतके टीले)-पर रहें तो उनका शरीर ठीक हो सकता है। रेतमें मनुष्यको नीरोग करनेकी शक्ति होती है। अतः बादशाहको राजस्थान भेजो।

'राजस्थान क्यों भेजो? वहाँकी रेत यहीं मँगा लो।'

'ठीक है, मँगा लेते हैं। रेत लानेके लिये ऊँट भेजो।'

'ऊँट क्यों भेजें? यहीं बाजारमें रेत मिल जायगी।'

'बाजारमें कैसे मिल जायगी?'

'अरे! दिल्लीका बाजार है, यहाँ सब कुछ मिलता है। मैंने एक जगह रेतका ढेर लगा हुआ देखा है!'

'अच्छा! तो फिर जल्दी रेत मँगा लो।'

बादशाहके आदमियोंने जाकर बनजारेसे पूछा कि रेत क्या भाव है? वह बोला कि चाहे मेट खरीदो, चाहे रेत खरीदो, एक ही भाव है। दोनों बैलोंपर बराबर तुलकर आये हैं। बादशाहके आदमियोंने वह सारी रेत खरीद ली। अगर बनजारा दिल्लीसे आये उस सज्जनकी बात मानता तो ये मुफ्तके रुपये कैसे मिलते? इससे सिद्ध हुआ कि बनजारेकी बुद्धि ठीक काम करती थी।

इस कहानीसे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जिन्होंने अपनी उन्नति कर ली है, जिनका विवेक विकसित हो चुका है, जिनको तत्त्वकी प्राप्ति हो गयी है, ऐसे सन्त-महात्माओंकी बात मान लेनी चाहिये; क्योंकि उनकी बुद्धिका नतीजा अच्छा हुआ है। उनकी बात माननेमें ही हमारा लाभ है। अपनी

बुद्धिसे अबतक हमने कितनी उन्नति की है? क्या तत्त्वकी प्राप्ति कर ली है? इसलिये भगवान्, शास्त्र और सन्तोंकी बात मानकर शिखा धारण कर लेनी चाहिये। अगर उनकी बात समझमें न आये तो भी मान लेनी चाहिये। हमने आजतक अपनी समझसे काम किया तो कितना लाभ लिया? जैसे, किसीने व्यापारमें बहुत धन कमाया हो तो वह जैसा कहे, वैसा ही हम करेंगे तो हमें भी लाभ होगा। उनको लाभ हुआ है तो हमें लाभ क्यों नहीं होगा? ऐसे ही जिन सन्त-महात्माओंने परमात्मप्राप्ति कर ली है; अशान्ति, दुःख, सन्ताप आदिको मिटा दिया है, उनकी बात मानेंगे तो हमारेको भी अवश्य लाभ होगा।

मैं चोटी रखनेकी बात कहता हूँ तो आपके अहितके लिये नहीं कहता हूँ। आपको दुःख हो जाय, नुकसान हो जाय, सन्ताप हो जाय—ऐसा मेरा बिलकुल उद्देश्य नहीं है। मैं आपके हितकी बात कहता हूँ। आपके लोक और परलोक दोनों सुधर जायँ, ऐसी बात कहता हूँ। वही बात कहता हूँ जो पीढ़ियोंसे आपकी वंश-

परम्परामें चली आयी है। एक चोटी रखनेसे आपका क्या नुकसान होता है ? आपको क्या दोष लगता है ? क्या पाप लगता है ? आपके जीवनमें क्या अड़चन आती है ? चोटी रखनेकी जो परम्परा सदासे थी, उसका त्याग आपने किसके कहनेसे कर दिया ? किस सन्तके कहनेसे, किस पुराणके कहनेसे, किस शास्त्रकी आज्ञासे, किस वेदकी आज्ञासे आपने चोटी रखना छोड़ दिया ?

चोटी रखना बहुत सुगम काम है, पर आपके लिये कठिन हो रहा है; क्योंकि आपने उसको छोड़ दिया है। यह बात आपकी पीढ़ियोंसे है। आपके बाप, दादा, परदादा आदि सब परम्परासे चोटी रखते आये हैं, पर अब आपने इसका त्याग कर दिया है, इसलिये अब आपको चोटी रखनेमें कठिनता हो रही है। विचार करें, चोटी रखना छोड़ देनेसे आपको क्या लाभ हुआ ? और अब आप चोटी रख लें तो क्या नुकसान होगा ? चोटी रखनेसे आपको पैसोंकी हानि होती हो, धर्मकी हानि होती हो, स्वास्थ्यकी हानि होती हो, आपको बड़ा भारी दुःख मिलता हो तो बतायें ! चोटी न रखनेमें

लाभ तो कोई-सा भी नहीं है, पर हानि बड़ी भारी है! चोटीके बिना आपका देवपूजन तथा श्राद्ध-तर्पण निष्फल हो जाता है, आपके दान-पुण्य आदि सब शुभकर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिये चोटीको मामूली समझकर इसकी उपेक्षा न करें।

पहले सब लोग चोटी रखते थे। चोटीके बिना कोई आदमी नहीं दीखता था। पर हमारे देखते-देखते थोड़े वर्षोंमें आदमी शिखारहित हो गये। अब प्रायः लोगोंकी शिखा नहीं दीखती। शिखा और सूत्र (जनेऊ)-का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आश्चर्यकी बात है कि आज ऐसे लोग भी हैं; जिनका सूत्र तो है, पर शिखा नहीं है! यह कितने पतनकी बात है! अगर यही दशा रही तो आगे आपको कौन कहेगा कि चोटी रखो? और क्यों कहेगा? कहनेसे उसको क्या लाभ?

शिखा हिन्दुत्वकी पहचान है। यह आपकी जातिकी रक्षा करनेवाली है। जनेऊ तो सबके लिये नहीं है, केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके लिये

है, पर शिखा हिन्दूमात्रके लिये है। चाहे द्विजाति हो, चाहे अन्त्यज हो, शिखा सबके लिये है। जैसे मुसलमानोंके लिये सुन्नत है, ऐसे ही हिन्दुओंके लिये शिखा है। सुन्नतके बिना कोई मुसलमान नहीं मिलेगा, पर शिखाके बिना आज हिन्दुओंका समुदाय-का-समुदाय मिल जायगा। मुसलमान और ईसाई बड़े जोरोंसे अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं और हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन करनेकी नयी-नयी योजनाएँ बना रहे हैं! आपने अपनी चोटी कटवाकर उनके प्रचार-कार्यको सुगम बना दिया है! इसलिये समय रहते हिन्दुओंको सावधान हो जाना चाहिये। मुसलमान अपने धर्मका प्रचार मूर्खतासे करते हैं और ईसाई बुद्धिमत्तासे। मुसलमान तो तलवारके जोरसे जबर्दस्ती धर्मपरिवर्तन करते हैं, पर ईसाई बाहरसे सेवा करके भीतर-ही-भीतर (गुप्त रीतिसे) धर्म-परिवर्तन करते हैं। वे स्कूल खोलते हैं और उनमें बालकोंपर अपने धर्मके संस्कार डालते हैं। इसीका परिणाम है कि घर बैठे-बैठे हिन्दुओंने अपनी चोटीका त्याग कर

दिया। इस काममें ईसाई सफल हो गये! मुसलमानों और ईसाइयोंका उद्देश्य मनुष्यमात्रका कल्याण करना नहीं है, प्रत्युत अपनी संख्या बढ़ाना है, जिससे उनका राज्य हो जाय। कलियुगका प्रभाव प्रतिवर्ष, प्रतिमास, प्रतिदिन जोरोंसे बढ़ रहा है। लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है। मनुष्यमात्रका कल्याण चाहनेवाली हिन्दू-संस्कृति नष्ट हो रही है। हिन्दू स्वयं ही अपनी संस्कृतिका नाश करेंगे तो रक्षा कौन करेगा?

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—चोटी रखनेसे क्या लाभ होगा?

उत्तर—जो लाभको देखता है, वह पारमार्थिक उन्नति कर सकता ही नहीं। लाभ देखकर ही कोई काम करोगे तो फिर शास्त्र-वचनका, सन्त-वचनका क्या आदर हुआ? उनकी क्या इज्जत हुई? अपने लाभके लिये, अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये तो पशु-पक्षी भी कार्य करते हैं। यह मनुष्यपना नहीं है। चोटी रखनेमें आपकी भलाई है—इसमें मेरेको

रत्तीमात्र भी सन्देह नहीं है। वास्तवमें हमें लाभ-हानिको न देखकर धर्मको देखना है। धर्मशास्त्रमें आया है कि बिना शिखाके जो भी यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि शुभकर्म किये जाते हैं, वे सब निष्फल हो जाते हैं—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

(कात्यायनस्मृति १।४)

इतना ही नहीं, शिखाके बिना किये गये वे पुण्यकर्म राक्षस-कर्म हो जाते हैं—

विना यच्छिखया कर्म विना यज्ञोपवीतकम्।
राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फला क्रियाः॥

(व्यास)

इसलिये धर्मशास्त्रने आज्ञा दी है—

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

'स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्या और देवपूजनके समय शिखामें ग्रन्थि (चोटीमें गाँठ) अवश्य लगानी चाहिये—ऐसा महाराज मनुने कहा है।'

हिन्दूधर्मके सोलह संस्कारोंमें 'चूड़ाकरण संस्कार' (मुण्डन संस्कार)-का भी विशेष महत्त्व है। इस संस्कारमें शिखा धारण करनेसे दीर्घ आयु, तेज, बल और ओजकी प्राप्ति होती है—

दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे शिखायै वषट्।

शिखाके विशेष महत्त्वके कारण ही हिन्दुओंने यवन-शासनमें अपनी शिखाकी रक्षाके लिये सिर कटवा दिया, पर शिखा नहीं कटवायी। कितने दुःखकी बात है कि आज हिन्दू उसी शिखाको अपने ही हाथों काट रहे हैं! धर्मशास्त्रमें शिखा न रखनेका प्रायश्चित्त बताया गया है—

शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

(लघुहारीत)

'तीनों वर्णोंके जो द्विजातिलोग मोहसे, द्वेषसे अथवा अज्ञानसे अपनी शिखा काट देते हैं, वे तप्तकृच्छ्र-व्रत करनेसे शुद्ध होते हैं।

अथ चेत् प्रमादान्निशिखं वपनं स्यात् तत्र कौशीं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपरि आशिखाबन्धादवतिष्ठेत्॥ (काठकगृह्यसूत्र)

'यदि कोई मनुष्य प्रमादवश शिखासहित क्षौर (हजामत) करा ले तो वह ब्रह्मग्रन्थियुक्त कुशाकी शिखा बनाकर दाहिने कानपर तबतक रखे, जबतक बाँधनेयोग्य शिखा न बढ़ जाय।'

यदि सत्तर वर्षकी अवस्थाके बाद (वृद्धावस्थामें) बाल झड़ जानेके कारण शिखा न रहे तो यथासम्भव चारों ओर बचे हुए बालोंसे शिखा बनाकर नित्यकर्म करता रहे। यदि बाल बिलकुल न हों तो कुशा आदिकी शिखा रखकर नित्यकर्म करे, पर शिखाशून्य कभी न रहे—

सप्तत्यूर्ध्वं तु चेत्तस्याः पूर्वतः पृष्ठतोऽपि वा।
पार्श्वतः परितो वापि समुद्भूतैश्च रोमभिः॥
शिखा कार्या प्रयत्नेन न चेन्नैवोपपद्यते।
तत्स्थाने सर्वशून्ये तु परितो वापि किं पुनः॥
ब्राह्मण्यसूचनायैवं तानि लोमानि धारयेत्।
अन्यथा न भवेदेव तथा तस्मात्समाचरेत्॥

(आंगिरसस्मृति ६१—६३)

'अखिल भारतीय पण्डित महापरिषद्'(वाराणसी)-ने शिखा रखनेके निम्न लाभ बताये हैं—

१- शिखा रखने तथा उसके नियमोंका यथावत् पालन करनेसे मनुष्यको सद्‌बुद्धि, सद्विचार आदिकी प्राप्ति होती है।

२- शिखा रखनेसे आत्मशक्ति प्रबल बनी रहती है।

३- शिखा रखनेसे मनुष्य धार्मिक, सात्त्विक और संयमी बनता है।

४- शिखा रखनेसे मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक समस्त कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है।

५- शिखा रखनेसे मनुष्य प्राणायाम, अष्टांगयोग आदि यौगिक क्रियाओंको ठीक-ठीक कर सकता है।

६- शिखा रखनेसे सभी देवता मनुष्यकी रक्षा करते हैं।

७- शिखा रखनेसे मनुष्यकी नेत्रज्योति सुरक्षित रहती है।

८- शिखा रखनेसे मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घायु होता है।

प्रश्न—चोटी रखनेसे शर्म आती है, वह कैसे छूटे ?

उत्तर—आश्चर्यकी बात है कि व्यापार आदिमें बेईमानी, झूठ-कपट करनेमें शर्म नहीं आती, गर्भपात आदि पाप करनेमें शर्म नहीं आती, चोरी, विश्वासघात आदि करते समय शर्म नहीं आती, पर चोटी रखनेमें शर्म आती है! आपकी शर्म ठीक है या भगवान् और सन्तोंकी बात मानना, उनको प्रसन्न करना ठीक है? आप चोटी रखो तो आरम्भमें शर्म आयेगी, पर पीछे सब ठीक हो जायगा।

प्रश्न—चोटी देखकर लोग हँसी उड़ाते हैं, कैसे बचें ?

उत्तर—लोग हँसी उड़ायें, पागल कहें तो उसको सह लो, पर धर्मका त्याग मत करो। आपका धर्म आपके साथ चलेगा, हँसी-दिल्लगी आपके साथ नहीं चलेगी। लोगोंकी हँसीसे आप डरो मत। लोग पहले हँसी उड़ायेंगे, पर बादमें

आदर करने लगेंगे कि यह अपने धर्मका पक्का आदमी है। एक शंकरानन्द नामके हमारे प्रेमी सज्जन थे। वे बहुत पढ़े-लिखे थे। उन्होंने मेरेको बताया कि मैं पढ़नेके लिये जर्मनी गया। वहाँ मैं धोती पहना करता था। मेरी वेश-भूषा देखकर पहले तो वहाँके लोगोंने मेरी हँसी उड़ायी, पर बादमें सब मेरा विशेष आदर करने लग गये कि यह ईमानदार आदमी है, सच्चा धर्मात्मा आदमी है। इसलिये अपने धर्मका पालन निधड़क होकर करो, इसमें डर किस बातका?

एक कहानी है। एक आदमीकी किसी कारणसे नाक कट गयी। उसके साथीने पूछा तो वह बोला कि दोनों आँखोंके बीचमें नाक आड़े आती है, इसलिये ब्रह्मके दर्शन नहीं होते। अगर बीचमें नाक न रहे तो दोनों आँखोंकी दृष्टि मिलनेसे साक्षात् ब्रह्मके दर्शन होते हैं! ऐसा सुनकर उसके साथीने भी अपनी नाक कटवा ली। जब उसको ब्रह्मके दर्शन नहीं हुए तो उसने

साथीसे कहा कि नाक कटवानेसे मेरेको तो दर्शन नहीं हुए? वह साथी बोला—'चुप रह, हल्ला मत कर! तेरेसे कोई पूछे तो यही कहना कि मेरेको ब्रह्मके दर्शन होते हैं।' धीरे-धीरे यह बात फैलती गयी। दूसरोंके कहनेसे, एक-दूसरेको देखकर नाक तो सबने कटवा ली, पर ब्रह्मके दर्शन किसीको नहीं हुए। एक पूरा समुदाय कटी नाकका हो गया! अब कोई नाकवाला आदमी उनके बीच आता तो वे सब मिलकर उसकी हँसी उड़ाते कि देखो, नक्कू आ गया! नक्कू आ गया!! इसी तरह चोटीकटिया लोग आज चोटीवालेकी हँसी उड़ाते हैं। अतः उनकी हँसीकी परवाह न करके अपने धर्मका पालन करना चाहिये।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

(महाभारत, स्वर्गा० ५। ६३)

'कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु (राग) अनित्य है।'

युवकोंके प्रति

बड़े दुःखकी बात है कि आजका युवक-समाज प्रायः अनुशासनहीन होता चला जा रहा है! गीतामें आया है—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥

(१६। ७)

'आसुरी स्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति (कर्तव्य और अकर्तव्य)-को नहीं जानते और उनमें न बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।'

गीताकी यह बात आजकलके नवयुवकोंमें प्रत्यक्ष देखनेमें आ रही है। आरम्भमें ही अच्छी शिक्षा न मिलनेसे वे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये; शरीरकी शुद्धि क्या होती है और अशुद्धि क्या होती है; खान-पान क्या शुद्ध होता है और क्या अशुद्ध होता है; बड़ों और छोटोंके साथ कैसा व्यवहार करना

चाहिये और कैसा नहीं करना चाहिये; वाणी आदिका सत्य क्या होता है और असत्य क्या होता है—इन सब बातोंको नहीं जानते। इस कारण वे सत्य-तत्त्व परमात्मासे विमुख हो जाते हैं। परमात्मासे विमुख होनेके कारण वे न धर्मको मानते हैं और न उसकी मर्यादाको मानते हैं। अविवेकके कारण उनमें आरम्भसे ही बड़प्पनका अभिमान भर जाता है कि मैं पढ़-लिख गया, समझदार हो गया, बड़ा हो गया। इस भावके कारण उनका विकास रुक जाता है। इसलिये युवकोंको कभी ऐसा नहीं मानना चाहिये कि अब मैं समझदार हो गया, पढ़-लिख गया, पूर्ण हो गया, प्रत्युत अपने शरीरको पुष्ट करनेकी तरह विद्याको भी आजीवन उत्तरोत्तर पुष्ट करते रहना चाहिये। मुझे तो जीवनभर विद्यार्थी बने रहना ही अच्छा लगता है।

मनुष्य-जीवन वास्तवमें विद्यार्थी-जीवन ही है। पशु, पक्षी, यक्ष, राक्षस, देवता आदि जितनी योनियाँ हैं, वे सब भोगयोनियाँ हैं। परन्तु मनुष्ययोनि केवल ब्रह्मविद्या प्राप्त करके मुक्त होनेके लिये है, भोग भोगनेके लिये नहीं।

विद्यार्थी किसे कहते हैं ?

जो केवल विद्याध्ययन करना चाहता है, उसको विद्यार्थी कहते हैं। 'विद्यार्थी' शब्दका अर्थ है—विद्याका अर्थी अर्थात् केवल विद्या चाहनेवाला। कौन-सी विद्या? विद्याओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या—**'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'** (गीता १०। ३२)

विद्याका वास्तविक स्वरूप क्या है ?

कुछ भी जानना विद्या है। अनेक शास्त्रोंका, कला-कौशलोंका, भाषाओं आदिका ज्ञान विद्या है। वास्तवमें विद्या वही है, जिससे जानना बाकी न रहे, जीवकी मुक्ति हो जाय—**'सा विद्या या विमुक्तये'** (विष्णुपुराण १। १९। ४१)। अगर जानना बाकी रह गया तो वह विद्या क्या हुई!

एक शब्दब्रह्म (वेद) है और एक परब्रह्म (परमात्मतत्त्व) है। अगर शब्दब्रह्मको जान लिया, पर परब्रह्मको नहीं जाना तो केवल परिश्रम ही हुआ—

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥

(श्रीमद्भा० ११। ११। १८)

अतः परमात्मतत्त्वको जानना ही मुख्य विद्या है और इसीमें मनुष्य-जीवनकी सफलता है।

जिससे जीविकाका उपार्जन हो, नौकरी मिले, वह भी विद्या है, पर वह विद्या परमात्मप्राप्तिमें सहायक नहीं होती, प्रत्युत कहीं-कहीं उस विद्याका अभिमान होनेसे वह विद्या परमात्मप्राप्तिमें बाधक हो जाती है। विद्याके अभिमानीको कोई ब्रह्मनिष्ठ महात्मा मिल जाय तो वह तर्क करके उनकी बातको काट देगा, उनको चुप करा देगा, जिससे वह वास्तविक लाभसे वंचित रह जायगा। अतः कहा गया है—

षड्ङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
यशोदाकिशोरे मनो वै न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

‘छहों अंगोंसहित वेद और शास्त्रोंको पढ़ा हो,

सुन्दर गद्य और पद्यमय काव्य-रचना करता हो, पर यशोदानन्दनमें मन नहीं लगा तो उन सभीसे क्या लाभ है?'

विद्या ग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता है?

विद्याके बिना मनुष्यजन्म सार्थक नहीं होगा, प्रत्युत मनुष्यजन्म और पशुजन्म एक समान ही होंगे। अतः विद्याकी अत्यन्त आवश्यकता है। वास्तवमें ब्रह्मविद्या ही विद्या है। कारण कि ब्रह्मविद्याके प्राप्त होनेपर कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य (लौकिक) विद्याएँ नहीं पढ़नी चाहिये। अन्य विद्याएँ भी पढ़नी चाहिये। अन्य भाषाओं, लिपियों आदिका ज्ञान-सम्पादन करना आवश्यक है, उचित है, पर उनमें ही लिप्त रहना उचित नहीं है; क्योंकि उनमें ही लिप्त रहनेसे मनुष्यजन्म निरर्थक चला जायगा। दूसरी बात, लौकिक विद्याओंको पढ़नेसे 'मैं पढ़ा-लिखा हूँ'—ऐसा एक अभिमान पैदा हो जायगा, जिससे बन्धन और दृढ़ हो जायगा।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान्पुरुषः स विद्वान्।

'शास्त्रोंको पढ़कर भी लोग मूर्ख बने रहते हैं। वास्तवमें विद्वान् वही है, जो शास्त्रके अनुकूल आचरण करता है।'

मनुष्यजन्मका उद्देश्य है—परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करना, और उसका साधन है—संसारकी सेवा। अतः लौकिक विद्या, धन, पद आदिका उपयोग संसारकी सेवामें ही है। ये संसारकी सेवामें ही काम आ सकते हैं, परमात्मप्राप्तिमें नहीं; क्योंकि परमात्मप्राप्ति लौकिक विद्याके अधीन नहीं है। हाँ, निःस्वार्थभावसे संसारकी सेवा करनेपर लौकिक विद्या परमात्मप्राप्तिमें सहायक हो सकती है। जिसके पास लौकिक विद्या आदि है, उसीपर संसारकी सेवा करनेकी जिम्मेवारी है। मालपर ही जकात लगती है और इन्कमपर ही टैक्स लगता है। माल नहीं हो तो जकात किस बातकी? इन्कम नहीं हो तो टैक्स किस बातका?

लौकिक विद्या, धन, पद आदिको लेकर संसारमें

मनुष्यकी जो प्रशंसा होती है, वह एक तरहसे मनुष्यकी निन्दा ही है। तात्पर्य है कि महिमा तो लौकिक विद्या आदिकी ही हुई, खुदकी तो निन्दा ही हुई! अतः जो लौकिक विद्या आदिसे अपनेको बड़ा मानता है, वह वास्तवमें अपनेको छोटा ही बनाता है।

प्राचीन और आधुनिक विद्यामें क्या अन्तर है?

प्राचीन (आध्यात्मिक) विद्या अपनेको और दूसरोंको शान्ति देनेवाली है। उससे अशान्ति, कलह, अभाव आदि मिट जाते हैं। परन्तु आजकलकी (लौकिक) विद्या केवल बाहर काम आनेवाली है, अपनेको और दूसरोंको शान्ति देनेवाली नहीं है। इससे अशान्ति, आपसका कलह बढ़ता है। जैसे धन आनेसे तृष्णा, धनका अभाव अधिक बढ़ता है, ऐसे ही आधुनिक विद्या सीखनेसे अभाव बढ़ता है।

आजकल तरह-तरहके आविष्कार होनेपर भी शान्ति नहीं मिल रही है; क्योंकि उनमें परवशता है, स्वतन्त्रता नहीं है अर्थात् मनुष्यको उनके परवश होना पड़ता है। परन्तु प्राचीन विद्यासे मनुष्यको

परवश नहीं होना पड़ता और उसको स्वयंका बोध हो जाता है।

प्राचीन विद्या मनुष्यको परमात्माके सम्मुख कराती है और आधुनिक विद्या मनुष्यको नाशवान्‌के सम्मुख कराती है, नाशवान्‌को महत्त्व देती है।

आधुनिक विद्या व्यवहारमें काम आती है; अतः इसको व्यवहारकी जगह ही महत्त्व देना चाहिये। इसको सर्वोपरि महत्त्व देना ही गलती है। वास्तवमें विद्या वही है, जो मनुष्यका कल्याण कर दे—‘**सा विद्या या विमुक्तये**’ (विष्णुपुराण १। १९। ४१)।

मनुष्यको उन्नत करनेवाली बातें

ये सात बातें मनुष्यको उन्नत करनेवाली हैं—

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च सिद्धिः स्वयं याति निवासहेतोः॥

‘उत्साही, अदीर्घसूत्री (आलस्यरहित), क्रियाकी विधिको जाननेवाले, व्यसनोंसे दूर रहनेवाले, शूर, कृतज्ञ तथा स्थिर मित्रतावाले मनुष्यको सिद्धि स्वयं अपने निवासके लिये ढूँढ़ लेती है।’

इन सात बातोंका विस्तार इस प्रकार है—

(१) विद्यार्थीमें यह उत्साह होना चाहिये कि मैं विद्याको पढ़ सकता हूँ; क्योंकि उत्साही आदमीके लिये कठिन काम भी सुगम हो जाता है और अनुत्साही आदमीके लिये सुगम काम भी कठिन हो जाता है।

(२) हरेक कामको बड़ी तत्परता और सावधानीके साथ करना चाहिये। थोड़े समयमें होनेवाले काममें अधिक समय नहीं लगाना चाहिये। जो थोड़े समयमें होनेवाले काममें अधिक समय लगाता है, उसका पतन हो जाता है—**'दीर्घसूत्री विनश्यति'।**

(३) कार्य करनेकी विधिको ठीक तरहसे जानना चाहिये। कौन-सा कार्य किस विधिसे करना चाहिये, इसको जानना चाहिये। शौच-स्नान, खाना-पीना, उठना-बैठना, पाठ-पूजा आदि कार्योंकी विधिको ठीक तरहसे जानना चाहिये और वैसा ही करना चाहिये।

(४) व्यसनोंमें आसक्त नहीं होना चाहिये। जूआ खेलना, मदिरापान, मांसभक्षण, वेश्यागमन, शिकार

(हत्या) करना, चोरी करना और परस्त्रीगमन—ये सात व्यसन तो घोरातिघोर नरकोंमें ले जानेवाले हैं*। इसके सिवाय चाय, काफी, अफीम, पान-मसाला, बीड़ी-सिगरेट आदि पीना, और ताश-चौपड़, खेल-तमाशा, सिनेमा-वीडियो देखना,वृथा बकवाद, वृथा चिन्तन आदि जो भी पारमार्थिक उन्नतिमें और न्याययुक्त धन आदि कमानेमें बाधक हैं, वे सब-के-सब व्यसन हैं। विद्यार्थीको किसी भी व्यसनके वशीभूत नहीं होना चाहिये।

(५) प्रत्येक काम करनेमें शूरवीरता होनी चाहिये। अपनेमें कभी वृथा भय, कायरता नहीं लानी चाहिये।

(६) जिससे उपकार पाया है, उसका मनमें सदा एहसान मानना चाहिये, उसका आदर-सत्कार करना चाहिये, कभी कृतघ्न नहीं बनना चाहिये।

(७) धर्म तथा मर्यादाके अनुकूल जिस उत्तम

---

* द्यूतं च मद्यं पिशितं च वेश्या
पापर्द्धि चौर्यं परदारसेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके
घोरातिघोरं नरके नयन्ति॥

व्यक्तिके साथ मित्रता करे, उसको हर हालतमें निभाना चाहिये।

जैसे मुसाफिर स्वयं धर्मशालाको ढूँढ़कर उसके पास आते हैं, ऐसे ही उपर्युक्त सात गुणोंवाले व्यक्तिको ढूँढ़कर सिद्धि स्वयं उसके पास आती है।

मातृशक्तिके प्रति

वर्तमानमें नारी-जातिका महान् तिरस्कार, घोर अपमान किया जा रहा है। नारीके महान् मातृरूपको नष्ट करके उसको मात्र भोग्या स्त्रीका रूप दिया जा रहा है। भोग्या स्त्री तो वेश्या होती है। जितना आदर माता (मातृशक्ति)-का है, उतना आदर स्त्री(भोग्या)-का नहीं है। परन्तु जो स्त्रीको केवल भोग्या मानते हैं, स्त्रीके गुलाम हैं, वे इस बातको क्या समझें? समझ ही नहीं सकते। विवाह माता बननेके लिये किया जाता है, भोग्या बननेके लिये नहीं। सन्तान पैदा करनेके लिये ही पिता कन्यादान करता है और सन्तान पैदा करने (वंशवृद्धि)-के लिये ही वरपक्ष कन्यादान स्वीकार करता है। परन्तु आज नारीको माँ बननेसे रोका जा रहा है और उसको केवल भोग्या बनाया जा रहा है। यह नारी-जातिका कितना महान् तिरस्कार है!

नारी वास्तवमें मातृशक्ति है। वह स्त्री और पुरुष दोनोंकी जननी(माँ) बनती है, पर पत्नी केवल पुरुषकी

ही बनती है। पुरुष अच्छा होता है तो उसकी केवल अपने ही कुलमें महिमा होती है, पर स्त्री अच्छी होती है तो उसकी पीहर और ससुराल—दोनों कुलोंमें महिमा होती है। राजा जनकजी सीताजीसे कहते हैं— '**पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ**'(मानस, अयोध्या० २८७।१)।

हमारे शास्त्रोंमें नारी-जातिको बहुत आदर दिया गया है। स्त्रीकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे शास्त्रने उसको पिता, पति अथवा पुत्रके आश्रित रहनेकी आज्ञा दी है, जिससे वह जगह-जगह ठोकरें न खाती फिरे*। स्त्री नौकरी करे तो यह उसका तिरस्कार है। उसकी महिमा तो घरमें रहनेसे ही है। घरमें वह महारानी है, पर घरसे बाहर वह नौकरानी है। घरमें तो वह एक पुरुषके अधीन रहेगी, पर बाहर उसको अनेक स्त्री-पुरुषोंके

---

* भ्रमन्सम्पूज्यते राजा भ्रमन्सम्पूज्यते द्विजः।
भ्रमन्सम्पूज्यते योगी भ्रमन्ती स्त्री विनश्यतिः॥
(चाणक्यनीति ६।४)

'भ्रमण करनेसे राजा पूजित होता है, भ्रमण करनेसे ब्राह्मण पूजित होता है, भ्रमण करनेसे योगी पूजित होता है; परन्तु स्त्री भ्रमण करनेसे विनष्ट (पतित) हो जाती है।'

अधीन रहना पड़ेगा, अपनेसे ऊँचे पदवाले अफसरोंकी अधीनता, फटकार, तिरस्कार सहन करना पड़ेगा, जो कि उसके कोमल हृदय, स्वभावके विरुद्ध है। वह आदरके योग्य है, तिरस्कारके योग्य नहीं। पिता, पति अथवा पुत्रकी अधीनता वास्तवमें स्त्रीको पराधीन बनानेके लिये नहीं है, प्रत्युत महान् स्वाधीन बनानेके लिये है। घरमें बूढ़ी 'माँ' का सबसे अधिक आदर होता है, बेटे-पोते आदि सब उसका आदर करते हैं, पर घरसे बाहर बूढ़ी 'स्त्री' का सब जगह तिरस्कार होता है।

आजकल स्त्रियोंको पुरुषके समान अधिकार देनेकी बात कही जाती है, पर शास्त्रोंने माताके रूपमें स्त्रीको पुरुषकी अपेक्षा भी विशेष अधिकार दिया है—

सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(मनु० २। १४५)

'माताका दर्जा पितासे हजार गुना अधिक माना गया है।'

सर्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः॥

(स्कन्द०, काशी० ११। ५०)

'सबके द्वारा वन्दनीय संन्यासीको भी माताकी प्रयत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये।'

वर्तमानमें गर्भ-परीक्षण किया जाता है और गर्भमें कन्या हो तो गर्भ गिरा दिया जाता है, क्या यह स्त्रीको समान अधिकार दिया जा रहा है ?

'माँ' शब्द कहनेसे जो भाव पैदा होता है, वैसा भाव 'स्त्री' कहनेसे नहीं पैदा होता। इसलिये श्रीशंकराचार्यजी महाराज भगवान् श्रीकृष्णको भी 'माँ' कहकर पुकारते हैं—'**मातः कृष्णाभिधाने**' (प्रबोध० २४४)। उपनिषदोंमें '**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव**' कहकर सबसे पहले माँकी सेवा करनेकी आज्ञा दी गयी है। '**वन्दे मातरम्**' में भी माँकी ही वन्दना की गयी है। हिन्दूधर्ममें मातृशक्तिकी उपासनाका विशेष महत्त्व है। ईश्वरकोटिके पाँच देवताओंमें भी मातृशक्ति (भगवती)-का स्थान है। देवीभागवत, दुर्गासप्तशती आदि अनेक ग्रन्थ मातृशक्तिपर ही रचे गये हैं। जगत्की सम्पूर्ण स्त्रियोंको मातृशक्तिका ही रूप माना गया है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
(दुर्गासप्तशती ११। ६)

परन्तु भोगीलोग मातृशक्तिको क्या समझें? समझ ही नहीं सकते। वे तो उसको भोग्या ही समझते हैं।

पुरुष स्त्रीका तिरस्कार करे, उसको दुःख दे, उसको तलाक दे, उसको मारे-पीटे—ऐसा शास्त्रोंमें कहीं नहीं कहा गया है। इतना ही नहीं , स्त्रीसे कोई बड़ा अपराध भी हो जाय तो भी उसको मारने-पीटनेका विधान नहीं है, प्रत्युत वह क्षम्य है। भीष्मजी कौरव-सेनाकी रक्षा करनेवाले थे—'**अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्**' (गीता १।१०); परन्तु दुर्योधन उनकी भी रक्षा करनेके लिये अपनी सेनाको आदेश देता है—'**भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि**' (गीता १। ११)। कारण कि दुर्योधन जानता था कि शिखण्डीके सामने आनेपर भीष्मजी उसपर कभी शस्त्र नहीं चलायेंगे, भले ही अपने प्राण चले जायँ! शिखण्डी पहले स्त्री था, वर्तमानमें नहीं; परन्तु वर्तमानमें पुरुषरूपसे

होनेपर भी भीष्मजी उसको स्त्री ही मानते हैं और उसपर शस्त्र नहीं चलाते, प्रत्युत उसीके द्वारा मारे जाते हैं—यह स्त्री-जातिका कितना सम्मान है!

शास्त्रोंके अनुसार पत्नी पतिके द्वारा किये गये पुण्य-कर्मोंकी भागीदार तो होती है, पर पाप-कर्मोंकी भागीदार नहीं होती। उसको मुफ्तमें आधा पुण्य मिलता है। समाजमें भी देखा जाता है कि अगर डॉक्टर, पण्डित आदिकी पत्नी अनपढ़ हो तो भी वह डॉक्टरनी, पण्डितानी आदि कहलाती है! वास्तवमें आज अभिमानको मुख्यता दी जा रही है, इसलिये नम्रता बढ़ानेकी बात न कहकर अभिमान बढ़ानेकी बात ही कही और सिखायी जा रही है, जो कि पतनका हेतु है। 'पुरुष ऐसा करते हैं तो हम क्यों न करें? हम पीछे क्यों रहें?'—यह केवल अभिमान बढ़ानेकी बात है। अभिमान जन्म-मरणका मूल और अनेक प्रकारके क्लेशों तथा समस्त शोकोंको देनेवाला है—

संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥

(मानस, उत्तर० ७४। ३)

अभिमानी व्यक्ति लौकिक मर्यादाको भी नहीं

समझ सकता, फिर वह शास्त्रोंकी बातोंको क्या समझेगा? समझ ही नहीं सकता।

संसारके हितके लिये मातृशक्तिने बहुत काम किया है। रक्तबीज आदि राक्षसोंका संहार भी मातृशक्तिने ही किया है। मातृशक्तिने ही हमारी हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षा की है। आज भी प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि हमारे व्रत-त्योहार, रीति-रिवाज, माता-पिताके श्राद्ध आदिकी जानकारी जितनी स्त्रियोंको रहती है, उतनी पुरुषोंको नहीं रहती। पुरुष अपने कुलकी बात भी भूल जाते हैं, पर स्त्रियाँ दूसरे कुलकी होनेपर भी उनको बताती हैं कि अमुक दिन आपकी माता या पिताका श्राद्ध है आदि। मन्दिरोंमें, कथा-कीर्तनमें, सत्संगमें जितनी स्त्रियाँ जाती हैं, उतने पुरुष नहीं जाते। कार्तिक-स्नान, व्रत, दान, पूजन, रामायण आदिका पाठ जितना स्त्रियाँ करती हैं, उतना पुरुष नहीं करते। तात्पर्य है कि स्त्रियाँ हमारी संस्कृतिकी रक्षा करनेवाली हैं। अगर उनका चरित्र नष्ट हो जायगा तो संस्कृतिकी रक्षा कैसे होगी?

वर्तमानमें सन्तति-निरोधके कृत्रिम उपायोंके प्रचार-

प्रसारसे स्त्रियोंमें लज्जा, शील, सतीत्व, सच्चरित्रता, नीरोगता, सदाचरण आदिका नाश हो रहा है। परिणामस्वरूप स्त्री-जाति केवल भोग्य वस्तु बनती जा रही है। यदि स्त्री-जातिका चरित्र भ्रष्ट हो जायगा तो देशकी क्या दशा होगी? आगे आनेवाली पीढ़ी अपने प्रथम गुरु माँसे क्या शिक्षा लेगी? स्त्री बिगड़ेगी तो उससे पैदा होनेवाले बेटी-बेटा(स्त्री-पुरुष)दोनों बिगड़ेंगे। अगर स्त्री ठीक रहेगी तो पुरुषके बिगड़नेपर भी सन्तान नहीं बिगड़ेगी। अतः स्त्रियोंके चरित्र, शील, लज्जा आदिकी रक्षा करना और उनको अपमानित, तिरस्कृत न होने देना, प्रत्युत उनका आदर-सत्कार करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। मनुस्मृतिमें आया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

(३। ५६)

'जहाँ स्त्रियोंका आदर किया जाता है, वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सब कार्य निष्फल हो जाते हैं।'

बुद्धिजीवियोंके प्रति

मनुष्यशरीर विवेक-प्रधान है। विवेकका अर्थ है—सार और असारको, कर्तव्य और अकर्तव्यको ठीक-ठीक जानना। मनुष्य इस विवेकको काममें नहीं लेता, इसका विशेष आदर नहीं करता, इसीलिये वह दुःख पाता है। अगर वह अपने विवेकको ठीक-ठीक मानकर उसके अनुसार चले तो खुद भी निहाल हो जाय और दूसरोंको भी निहाल कर दे! इस विवेकको जाग्रत् करनेके लिये ही सत्-शास्त्र, सत्पुरुष, गुरु, माता-पिता आदि हैं। इनके ऊपर विवेकको जाग्रत् करनेकी जिम्मेवारी है। इस विवेकको काममें लेनेकी एक खास बात है, उसपर आप ध्यान दें।

साधारण दृष्टिसे रुपये बहुत बड़ी चीज दीखते हैं; क्योंकि रुपयोंसे सब चीजें आती हैं। हम बहुत-सी चीजें रुपयोंसे खरीद लेते हैं और उनसे हमारा काम चलता है। इसलिये जीवनके लिये रुपये बड़ी

चीज दीखते हैं। हम जो जी रहे हैं, यह जीना हमें बहुत अच्छा लगता है। दुःखी-से-दुःखी प्राणी भी जल्दी मरना नहीं चाहता। अतः जीनेके लिये अन्न, जल, वस्त्र आदि वस्तुएँ उपयोगी हैं। हमारा जीवन-निर्वाह हो जाय, हमारे प्राण बने रहें, हम नीरोग रहें, हम शिक्षित बनें—इसके लिये वस्तुओंकी आवश्यकता है। उन वस्तुओंके लिये ही रुपयोंकी आवश्यकता है। रुपयोंके लिये वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं है। हाँ, वस्तुओंसे रुपये पैदा हो सकते हैं; परन्तु रुपयोंसे वस्तुएँ बहुत ऊँची हैं, जिनसे हमारा जीवन रहता है। रुपये अन्न, वस्त्र आदि वस्तुओंके लेन-देनमें काम आते हैं। तात्पर्य है कि रुपये हमारे जीवन-निर्वाहमें साक्षात् हेतु नहीं हैं अर्थात् जीवन-निर्वाहमें रुपये खुद काम नहीं आते, जबकि वस्तुएँ खुद काम आती हैं। अतः रुपयोंकी अपेक्षा वस्तुएँ अधिक मूल्यवान् हैं।

वस्तुओंसे भी बहुत मूल्यवान् हैं—प्राणी, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष—ये बहुत कामके हैं। इनके पालनसे

ही हमें जीवनोपयोगी वस्तुएँ मिलती हैं। अतः जिनसे जीवन चले, वे जीनेवाले प्राणी श्रेष्ठ हैं। उन प्राणियोंके लिये ही वस्तुएँ हैं। प्राणियोंमें भी गाय बहुत श्रेष्ठ है; क्योंकि गायका शरीर बहुत पवित्र और उपयोगी है, यहाँतक कि उसके गोबर-गोमूत्र भी पवित्र हैं और उसके खुरोंसे उड़ी धूल (गोधूलि) भी पवित्र है! सम्पूर्ण धार्मिक कार्योंमें गायका दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र काममें आते हैं। गायके गोबर और गोमूत्रसे अनेक बड़े-बड़े रोग दूर होते हैं। गायका दूध जितना सात्त्विक होता है, उतना सात्त्विक दूध भैंस आदि किसीका भी नहीं होता। गाड़ी चलानेवाले जानते ही हैं कि गाड़ीका हार्न सुनते ही गायें सड़कके किनारे हो जाती हैं, जबकी भैंस सड़कमें ही खड़ी रहती है। इसलिये भैंसका दूध सात्त्विक नहीं होता और बुद्धिको स्थूल करता है। इतनी उपयोगी और पवित्र होनेपर भी गायमें परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेकी योग्यता नहीं है। यह योग्यता मनुष्यमें ही है।

इसलिये मनुष्य सभी प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। दूसरे जितने प्राणी हैं, वे अपने पुराने कर्मोंके फल भोगते हैं और फल भोगकर शुद्ध होते हैं। परन्तु मनुष्यमें दो बातें हैं—एक तो पुराने पापों तथा पुण्योंके फल भोगना और एक आगे अपने उद्धारके लिये काम करना। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितिका उपभोग करना और उनसे सुखी-दुःखी होना पशुओंमें भी है। सुख पानेका और दुःख मिटानेका उद्योग पशु भी अपनी बुद्धिके अनुसार करते हैं। परन्तु भविष्यमें क्या होगा—इसका ठीक तरहसे विचार करनेमें पशु-पक्षी समर्थ नहीं हैं, पर मनुष्य समर्थ है।

मनुष्य विवेक-प्रधान है। इसलिये हमारा हित किस बातमें है और अहित किस बातमें है, हमारा उत्थान किस बातमें है और पतन किस बातमें है, सार क्या है और असार क्या है, नित्य क्या है और अनित्य क्या है, सत्य क्या है और असत्य क्या है—इन सब बातोंको जाननेकी योग्यता मनुष्यमें है, पशु-पक्षियोंमें नहीं। अतः मनुष्योंमें भी विवेक मूल्यवान् है। जो

विवेकके अनुसार चलते हैं, विवेकको महत्त्व देते हैं, वे मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। विवेक श्रेष्ठ है, इसलिये विवेकका आधार लेकर चलनेवाले भी श्रेष्ठ हैं। विवेक किसलिये है? विवेक इसलिये है कि मनुष्य हितकारक काम करे और अहितकारक काम न करे, सारको ग्रहण करे और असारका त्याग करे; ऐसा काम करे, जिससे वर्तमानमें और भविष्यमें, अपनेको और दूसरोंको सुख हो, दुःख न हो। विवेक विशेषरूपसे वीतराग मनुष्यमें ही जाग्रत् होता है। रागी और भोगी मनुष्य विवेकी नहीं होते। रागी-भोगी मनुष्य वर्तमानको ही देखते हैं, जबकि वीतराग मनुष्य भविष्यको, परिणामको भी देखते हैं।

जब मनुष्य वस्तुओंका और रुपयोंका ज्यादा आदर करने लग जाते हैं, तब विवेक दब जाता है। भगवान्ने गीतामें तीन तरहकी बुद्धि बतायी है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्तिको, कर्तव्य और अकर्तव्यको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको ठीक-ठीक जानती है, वह सात्त्विकी

होती है[१]। जो बुद्धि धर्म और अधर्मको, कर्तव्य और अकर्तव्यको ठीक-ठीक नहीं जानती, वह राजसी होती है[२]। जो बुद्धि अधर्मको धर्म एवं धर्मको अधर्म मान लेती है और इस प्रकार सब चीजोंको उलटा ही मान लेती है, वह तामसी होती है[३]। सात्त्विकी बुद्धि थोड़े मनुष्योंमें ही होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे मनुष्योंमें सात्त्विकी बुद्धि होती ही नहीं। सात्त्विकी बुद्धिको ठीक-ठीक काममें लानेवाले मनुष्य थोड़े हैं। राजसी बुद्धिवाले मनुष्य बहुत हैं। तामसी बुद्धिवाले मनुष्य तो इस कलियुगमें और भी अधिक हैं, जिन्हें उलटा ही दीखता है। उलटा दीखना क्या

१-प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥
(गीता १८। ३०)

२-यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥
(गीता १८। ३१)

३-अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥
(गीता १८। ३२)

हुआ ? वस्तुओं और प्राणियोंसे भी बढ़कर रुपयोंको मान लिया। वे रुपयोंका ही संग्रह करते हैं। रुपयोंके लिये झूठ, कपट, चोरी, डकैती, मारपीट, हत्या आदि करनी पड़े तो वह भी करनेके लिये तैयार हो जाते हैं ! रुपयोंके लिये गायोंको भी मारने लगते हैं। यह बिलकुल तामसी बुद्धि है। रुपये कमाना और उनकी रक्षा करना तामसी बुद्धि नहीं है, प्रत्युत सत्–असत् , नित्य–अनित्य, सदुपयोग–दुरुपयोग, हित–अहित आदिका विचार छोड़कर झूठ, कपट, बेईमानी, चोरी आदि करके किसी तरहसे रुपये इकट्ठा करना महान् तामसी बुद्धि है। इससे क्या होगा ? रुपयोंका महत्त्व ज्यादा होगा। फिर रुपये वस्तुओंके लिये नहीं रहेंगे, प्रत्युत संख्या बढ़ानेके लिये हो जायँगे। वस्तुएँ भी रुपयोंकी संख्या बढ़ानेके लिये हो जायँगी। हजार हो जाय तो लाख, लाख हो जाय तो करोड़, करोड़ हो जाय तो अरब—इस तरह रुपयोंकी इच्छा बढ़ती ही जायगी। वे यह नहीं सोचते और न सोच ही सकते हैं कि इतने रुपये बढ़ाकर क्या करेंगे ? न अच्छे आचरणोंकी

तरफ विचार है, न व्यक्तियोंकी तरफ विचार है, न वस्तुओंकी तरफ विचार है; बस, केवल रुपये कमाने और इकट्ठे करनेकी तरफ ही विचार है। अधिक संग्रह करनेसे दूसरे निर्धन हो रहे हैं—इस तरफ उनकी दृष्टि ही नहीं जाती। सात्त्विक मनुष्यके पास थोड़े रुपये होनेपर भी उसके द्वारा अपना और दूसरोंका हित होता है। परन्तु तामस मनुष्यके पास बहुत रुपये होनेपर भी उसके द्वारा अपना और दूसरोंका अहित होता है।

रुपयोंको खर्च करना और रुपयोंकी संख्या बढ़ाना—ये दो भाग हैं। इसमें खर्चका भाग ही अपने और दूसरोंके काम आता है। जो संग्रहका भाग है, वह अपनेमें अभिमान बढ़ाता है, जो कि अपने पतनका हेतु है और समाजमें दरिद्रता, संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष, चोरी आदि बढ़ाता है, जो कि समाजके पतनका हेतु है। जितने भी दुर्गुण-दुराचार हैं, वे सब-के-सब रुपयोंकी संख्या बढ़ानेकी दृष्टिसे आते हैं। मनुष्य रुपयोंसे बड़ा माना जाता है, पर लोगोंके हृदयमें उसका आदर नहीं होता। हृदयमें सब उसका निरादर और तिरस्कार करते हैं। रुपयोंके

कारण दबकर दूसरे मुँहसे कुछ न बोलें, यह बात अलग है, पर हृदयमें भाव अच्छा नहीं होता। परन्तु विवेकी, वीतराग मनुष्यका संसारमें हृदयसे आदर होता है।

विवेकसे भी ऊँचा है—धर्म और सत्य-तत्त्व। जो धर्मके पालन और सत्य (परमात्मतत्त्व)-की प्राप्तिमें लग जाते हैं, वे सबसे ऊँचे हो जाते हैं। सत्यकी तरफ चलनेवालेका सब आदर करते हैं। साधारण लोग भी आदर करते हैं, धनी लोग भी आदर करते हैं, राजा-महाराजा भी आदर करते हैं, सन्त-महात्मा भी आदर करते हैं। और तो क्या, सत्यकी तरफ चलनेवालेका भगवान् भी आदर करते हैं! अतः सत्य सबसे बड़ा हुआ। उस सत्यकी प्राप्तिके लिये ही विवेक है, विवेकके लिये ही मनुष्य हैं, मनुष्योंके लिये ही वस्तुएँ हैं और वस्तुओंके लिये ही रुपये हैं।

मनुष्य विवेकप्रधान है। अतः उसके लिये यह विशेषरूपसे उचित है कि वह विवेकका आदर करे, विवेकको महत्त्व दे और विवेकसे श्रेष्ठ जो सत्य-तत्त्व है, उसकी प्राप्तिमें अपना समय लगाये तो फिर

मरनेके बाद भी दुःख नहीं होगा। रुपये, वस्तु, व्यक्ति आदि सब यहीं रह जायँगे, साथ नहीं चलेंगे, पर धर्म और सत्य-तत्त्व पीछे नहीं रहेगा। धर्म सद्‌गति देता है और सत्य-तत्त्व मुक्ति देता है। सत्य-तत्त्वकी प्राप्तिसे सदाके लिये शान्ति हो जायगी। उस सत्य-तत्त्वको प्राप्त करना ही मनुष्यजन्मका खास ध्येय—लक्ष्य है। उसको प्राप्त कर लिया तो मनुष्यजन्म सफल हो गया। अगर उसको प्राप्त नहीं किया तो मनुष्यजन्म सफल नहीं हुआ।

खाना-पीना, आराम करना, भोग भोगना आदि तो कुत्ते, सूअर और गधे भी करते हैं। इसकी कोई विशेष महिमा नहीं है। विशेष महिमा तो परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेमें ही है, जिसमें हमारा और दुनियाका, वर्तमानमें और परिणाममें बड़ा भारी हित है। गोस्वामी तुलसीदासजी-जैसे जो अच्छे-अच्छे महात्मा हो गये हैं, उन्होंने अपना भी कल्याण किया और दुनियाका भी कल्याण किया। उनकी वाणीसे आज भी दुनियाका कल्याण होता है, पतनसे बचाव होता है, शान्ति मिलती है, मार्गदर्शन मिलता है। ऐसा परोपकार कोई धनी-

से–धनी व्यक्ति भी नहीं कर सकता। अतः सत्यकी प्राप्तिका ही उद्देश्य मुख्य रहना चाहिये। रुपये भी सत्यकी तरफ लगें, वस्तुएँ भी सत्यकी तरफ लगें, मनुष्य भी सत्यकी तरफ लगे और विवेक भी सत्यकी तरफ लगे, तब तो उन्नति है। परन्तु सत्यकी परवाह न करके नाशवान् पदार्थोंकी परवाह की जाय और पदार्थोंसे भी अधिक रुपयोंको पैदा करने और संग्रह करनेको महत्त्व दिया जाय, तब तो पतन–ही–पतन है।

समाजपर बुद्धिजीवियोंका अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः उनका कर्तव्य है कि वे अपने विवेकको महत्त्व देकर सत्य–तत्त्वकी प्राप्तिमें अपना जीवन लगायें।

इस लेखकी सार बात—

धनसे अधिक वस्तुओंका महत्त्व है, वस्तुओंसे अधिक मनुष्यका महत्त्व है, मनुष्यसे अधिक विवेकका महत्त्व है, विवेकसे अधिक परमात्मतत्त्वका महत्त्व है। उस परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें ही मनुष्यजन्मकी सफलता है।

सन्तोंके प्रति

जैसे परिवारमें जो मुख्य व्यक्ति होते हैं, उनपर परिवारकी विशेष जिम्मेवारी होती है, ऐसे ही समाजमें जो व्यक्ति मुख्य माने जाते हैं, जिनको समाज आदरकी दृष्टिसे देखता है, उनको अच्छा मानता है, उनपर समाजकी विशेष जिम्मेवारी होती है। अपने-अपने स्थान या क्षेत्रमें जो व्यक्ति मुख्य कहलाते हैं, उन साधु, ब्राह्मण, व्याख्यानदाता, नेता, शासक, अध्यापक, आचार्य, महन्त, कथावाचक आदिको अपने आचरणोंमें विशेष सावधानी रखनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है, जिससे दूसरोंपर उनका अच्छा प्रभाव पड़े। कारण कि मुख्य व्यक्तिकी ओर सबकी दृष्टि रहती है। रेलगाड़ीके चालकके समान मुख्य व्यक्तिपर विशेष जिम्मेवारी रहती है। रेलगाड़ीमें बैठे अन्य व्यक्ति सोये भी रह सकते हैं, पर चालकको सदा जाग्रत् रहना

पड़ता है। उसकी थोड़ी भी असावधानीसे दुर्घटना हो जानेकी सम्भावना रहती है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (३। २१)

'श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं और वह जो कुछ कहता है, दूसरे मनुष्य उसीके अनुसार करते हैं।'

उपर्युक्त श्लोकमें श्रेष्ठ मनुष्यके आचरणके विषयमें तो '**यत्-यत्**', '**तत्-तत्**' और '**एव**'—ये पाँच पद आये हैं, पर वचनके विषयमें '**यत्**' और '**तत्**'—ये दो ही पद आये हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यके आचरणोंका असर दूसरोंपर पाँच गुना (अधिक) पड़ता है और वचनोंका असर दो गुना (अपेक्षाकृत कम) पड़ता है। जो मनुष्य स्वयं अपने कर्तव्यका पालन न करके केवल अपने वचनोंसे दूसरोंको कर्तव्य-पालनकी

शिक्षा देता है, उसकी शिक्षाका समाजपर विशेष असर नहीं पड़ता। समाजपर शिक्षाका विशेष असर तभी पड़ता है, जब शिक्षा देनेवाला स्वयं भी निःस्वार्थभावसे अपने कर्तव्यका पालन करे।

वास्तवमें बड़ा वह है, जिसमें बड़प्पनका अभिमान नहीं है। कोई बड़ा होता है तो वह नम्रताके कारण बड़ा होता है। बड़प्पन दूसरोंको देनेकी चीज है, लेनेकी नहीं है। सबकी सेवा करना, सुख पहुँचाना, परिश्रम करना—यह अपने लेनेकी चीज है और मान-बड़ाई, आदर-सत्कार दूसरोंको देनेकी चीज है। शास्त्रोंमें माता-बहनोंके लिये लिखा है कि तुम पतिको परमेश्वर मानो, पर पुरुषोंके लिये नहीं लिखा है कि तुम अपनेको परमेश्वर मानो, नहीं तो सभी विवाहित पुरुष परमेश्वर हो जायँगे और कुँआरे बेचारे बाकी रह जायँगे! अतः अपनेसे जो छोटे हैं, उनका निरादर न करके प्यार करना चाहिये।

गीता आदि ग्रन्थोंको पढ़नेसे और सन्तोंकी बातें

सुननेसे मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि संसारमें कोई कितना ही नीच प्राणी क्यों न हो, उसका भी उद्धार हो सकता है, उसको भी भगवान् मिल सकते हैं, वह भी जीवन्मुक्त हो सकता है, उसको भी तत्त्वज्ञान हो सकता है। जो अपनेको नीचा मानता है, उसको जितनी जल्दी और सुगमतासे परमात्मप्राप्ति हो सकती है, उतनी जल्दी और सुगमतासे अपनेको बड़ा माननेवालेको नहीं हो सकती। कारण कि बड़प्पनका अभिमान आसुरी सम्पत्ति है, जो पतन करनेवाली है।

छोटे छोटे तर गये, राम भजन लवलीन।
जातिके अभिमानसे, डूबे सभी कुलीन॥

इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं उच्च वर्णकी निन्दा करता हूँ। उच्च वर्णको मैं ऊँचा ही मानता हूँ। परन्तु वे ऊँचे तभी होंगे, जब ऊँचा कार्य करेंगे। अभिमानमें आकर नीचा कार्य करेंगे तो ऊँचापन कबतक टिकेगा? जो ऊँचा कार्य करता है, वह अपने-आपको भले ही नीचा माने, पर दुनिया

उसको बड़ा मानने लग जायगी; क्योंकि वास्तवमें वह बड़ा है। जैसे, भगवान् विष्णुका निवास चरणोंमें है, इसीलिये बड़ोंके चरण छूकर प्रणाम करते हैं। चरणोंमें निवास होनेपर भी वे सबसे बड़े माने जाते हैं; क्योंकि वे प्राणिमात्रका पालन-पोषण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण क्षत्रियोंकी सेनाके बीचमें अर्जुनके रथके घोड़े हाँकते हैं। उनको घोड़ोंका कोचवान बनते लज्जा नहीं आयी। परन्तु जब कौरवसेनाके सेनापति भीष्मजी शंख बजाते हैं, तब पाण्डवसेनामें सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्ण शंख बजाते हैं। तात्पर्य है कि जो वास्तवमें बड़ा होता है, उसको यह वहम नहीं होता कि छोटी जगह बैठनेसे मैं छोटा हो जाऊँगा। यह वहम उन्हींको होता है, जो वास्तवमें छोटे होते हैं, पर बड़ा बनना चाहते हैं। उन्हींको यह भय लगता है कि छोटी जगह बैठनेसे अथवा छोटा काम करनेसे कोई हमें छोटा न मान ले! अगर वे वास्तवमें बड़े हैं तो भय किस बातका?

अतः समाजमें बड़े कहलानेवाले व्यक्तियोंका कर्तव्य है कि वे स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके तत्परतापूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करें। व्यक्तिके सुधारसे ही समाजका सुधार होगा—ऐसा मेरा विश्वास है। वास्तवमें व्यक्तिका सुधार राग-रहित होनेमें है। वीतराग पुरुषके द्वारा समाजका जितना सुधार होता है, उतना दूसरे किसी व्यक्तिके द्वारा हो ही नहीं सकता। अतः जिस समाजमें वीतराग पुरुष होते हैं, वह समाज सबसे श्रेष्ठ होता है।